5 तबला एवं पखावज वाद्य की उत्पत्ति तथा विकास

तबला उत्तर भारतीय संगीत का एक महत्वपूर्ण वाद्य है, जिसके बिना उत्तर भारतीय संगीत की कल्पना भी नहीं की जा सकती। तबला मूलतः एक संगत वाद्य है। संगीत की संस्थागत शिक्षा का जब आरंभ हुआ, तो तबला वाद्य की उत्पत्ति और उसके विकास के संबंध में तत्कालीन विद्वानों द्वारा अपने-अपने विचार प्रस्तुत किए जाने शुरू हुए जिनमें काफी मत-मतांतर थे। सत्य की खोज में समय के साथ इन मत-मतांतरों की तार्किक व्याख्या चलती रही। अब हम तबला वाद्य की उत्पत्ति और उसके विकास से संबंधित विभिन्न विद्वानों के मतों की संक्षिप्त व्याख्या करेंगे।

तबला वाद्य की उत्पत्ति के संबंध में यह मत बहुत समय तक प्रचलित रहा कि पखावज को बीच से काटकर तबला वाद्य का निर्माण किया गया है। कालांतर में इस मत का खंडन करते हुए विद्वानों द्वारा यह तर्क दिया गया कि पखावज को बीच से काट देने पर उसका प्रत्येक भाग नीचे से विदेशी वाद्य 'बोंगो' की तरह खुला रहेगा, जबकि तबले के दोनों भाग नीचे से बंद रहते हैं। अतः यह मत तबला वाद्य के आविष्कार के संबंध में स्वीकार नहीं किया जा सकता।

एक अन्य मत के अनुसार 13वीं सदी के अलाउद्दीन खिलजी के दरबारी कवि और हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के शिष्य अमीर खुसरो (1253 ई. से 1325 ई. तक) को तबला वाद्य का आविष्कारक माना जाता है। लेकिन, स्वयं अमीर खुसरो ने अपनी किसी पुस्तक में इस बात का उल्लेख नहीं किया है कि उन्होंने किसी तबले जैसे वाद्य का निर्माण किया, साथ ही उनके बाद 18वीं शताब्दी तक किसी ग्रंथ में न तो तबला वाद्य का कोई वर्णन मिलता है और न ही अमीर खुसरो द्वारा इसके निर्माण की कोई जानकारी प्राप्त होती है। इस आधार पर 13वीं सदीं के अमीर खुसरो को तबला वाद्य का आविष्कारक नहीं माना जा सकता।

कुछ विद्वान इसे विदेशी वाद्य मानते हैं। उनका मानना है कि यह वाद्य मुस्लिमों द्वारा भारत आया और धीरे-धीरे यहाँ के संगीत में घुल-मिल गया। अरब, फारस, तुर्किस्तान आदि देशों में भी अनेक ऊर्ध्वमुखी (जिस वाद्य का मुख ऊपर की ओर हो) अवनद्ध वाद्यों के लिए साधारणतः 'तब्ल' शब्द का प्रयोग किया जाता था, परंतु उसमें से कोई अवनद्ध वाद्य भारतीय तबले जैसा नहीं था। इसके अतिरिक्त अमीर खुसरो के लगभग तीन सौ वर्ष बाद तक भी 'तब्ल' शब्द का प्रयोग युद्ध के नगाड़े के अर्थ में किया जाता रहा है। इसका उल्लेख सिखों के पवित्र ग्रंथ *गुरु ग्रंथ साहिब* और मलिक मुहम्मद जायसी कृत *पद्मावत* महाकाव्य में भी मिलता है। 13वीं सदीं से लेकर 18वीं सदी के मध्य लिखे गए ग्रंथों में विभिन्न प्रकार के अवनद्ध वाद्यों का उल्लेख मिलता

© NCERT not to be republished

है, किंतु तबला जैसे वाद्य या उसके किसी वादक की जानकारी प्राप्त नहीं होती है। यद्यपि तबला एक लोक वाद्य के रूप में लोक संगीत में प्रयुक्त होता रहा था।

एक अन्य मत के अनुसार मुगल बादशाह मुहम्मद शाह 'रंगीला' (1719–1748 तक शासनकाल) के दरबार में सदारंग और अदारंग नामक दो प्रसिद्ध गायक थे, जिन्होंने खयाल गायन शैली का प्रचार किया। मुहम्मद शाह 'रंगीला' के ही काल में रहमान खाँ पखावजी के पुत्र खुसरो खाँ ने सदारंग से खयाल गायन की शिक्षा ग्रहण की थी। इन्ही खुसरो खाँ ने तत्कालीन प्रचलित लोक अवनद्ध वाद्य तबले में कुछ परिवर्तन कर उसको खयाल गायन की संगत के अनुकूल बनाया और सर्वप्रथम तबला वाद्य को शास्त्रीय संगीत में एक संगत वाद्य के रूप में प्रतिष्ठित किया। चूँकि खयाल गायन शैली के आविर्भाव से पहले ध्रुपद-धमार गायन शैली प्रचलित थी, जिसके साथ पखावज की संगत होती थी, पखावज वाद्य का ज़ोरदार और गंभीर नाद खयाल की संगत के अनुकूल नहीं समझा गया। इस प्रकार खयाल गायन शैली के साथ संगत करने के उद्देश्य से तबला वाद्य प्रकाश में आया।

एक मत के अनुसार, तबले में आवश्यकतानुसार सुधार करने के कारण खुसरो खाँ को ही उस्ताद सुधार खाँ की उपाधि प्रदान की गई थी, क्योंकि उस्ताद सुधार खाँ की पारिवारिक पृष्ठभूमि के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। इन्हीं को कुछ विद्वानों ने सिद्धार खाँ भी लिखा है। इस तरह दिल्ली में जो तबला विकसित हुआ, उसे दिल्ली घराना और दिल्ली बाज का नाम मिला।

वर्तमान काल के संगीत विद्वानों का मानना है कि तबला सदृश वाद्य भारतीय संगीत में बहुत पहले से प्रचार में था। महाराष्ट्र में भाजा गुफा, जिसका समय दूसरी शताब्दी ई.पू. माना जाता है, में एक स्त्री की मूर्ति उकेरी गई है, जो तबला-डग्गा सदृश जोड़ी वाद्य को अपनी कमर में बाँधकर बजा रही है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि तबला सदृश जोड़ी वाद्य मुस्लिम शासन के आरंभ होने के पहले से ही भारतीय संगीत का अभिन्न अंग था।

वर्तमान में तबला वाद्य की उत्पत्ति का आधार भरत मुनि के *नाट्यशास्त्र* में वर्णित त्रिपुष्कर वाद्य को माना जाता है। भारतीय संगीत के आधारभूत ग्रंथ *नाट्यशास्त्र* के अनुसार सभी वाद्यों में त्रिपुष्कर सर्वाधिक समृद्ध और उन्नत अवनद्ध वाद्य था, जिसके आविष्कार की प्रेरणा स्वाति मुनि को प्राप्त हुई थी। इसकी कथा इस प्रकार से है— *एक समय वर्षा ऋतु में स्वाति मुनि जल लेने हेतु पुष्कर (तालाब) पर गए। उस समय आकाश में बादल छाए हुए थे और वर्षा हो रही थी। वायु वेग द्वारा जल की बूँदों के कमल पत्रों पर गिरने से कर्णप्रिय ध्वनि उत्पन्न हो रही थी जिसे सुनकर स्वाति मुनि आश्चर्यचकित हो गए। उन्होंने बड़े, मध्यम और छोटे आकार के कमल पत्रों पर गिरने वाली बूँदों से उत्पन्न विभिन्न प्रकार की गंभीर व मधुर ध्वनियों को सुनकर विश्वकर्मा की सहायता से विभिन्न प्रकार के पुष्कर वाद्यों का निर्माण किया। इनमें आंकिक द्विमुखी वाद्य था, तो ऊर्ध्वक और आलिंग्य एक मुखी वाद्य थे। स्वाति मुनि को इन वाद्यों के निर्माण की प्रेरणा पुष्कर से मिली थी, अतः इन्हें त्रिपुष्कर भी कहा गया।* त्रिपुष्कर वाद्य के तीनों भाग प्रारंभ में

© NCERT not to be republished

एक ही वाद्य के तीन भिन्न-भिन्न हिस्से थे। कालांतर में त्रिपुष्कर वाद्य के अलग-अलग भागों में विभक्त होने से आंकिक भाग एक स्वतंत्र वाद्य के रूप में विकसित हुआ, तो एक मुख वाले दोनों ऊर्ध्वमुखी भागों की जोड़ी ऊर्ध्वक और आलिंग्य, एक दूसरे स्वतंत्र वाद्य के रूप मे प्रचलित हुए। आंकिक तथा ऊर्ध्वक व आलिंग्य (द्विपुष्कर) वादन की परंपरा ईसा पूर्व से मिलती है। यह परंपरा सातवीं से तेरहवीं शताब्दी तक लोकप्रिय होकर प्रतिष्ठित हो चुकी थी। कालांतर में यह वाद्य क्रमशः मृदंग तथा जोड़ी वाद्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

चित्र 5.1 – तबला वाद्य बजाते हुए उस्ताद ज़ाकिर हुसैन

1. ऊर्ध्वमुखी वाद्य से आपका क्या अभिप्राय है?
2. जोड़ी वाद्य को वर्तमान में हम किस नाम से जानते हैं?
3. पखावज को काटकर तबला वाद्य बनाना वैज्ञानिक दृष्टि से क्यों असंभव है?
4. दूसरी शताब्दी में तबला वाद्य की छवि किस इमारत में दिखती है?

?

सातवीं शताब्दी के बाद धीरे-धीरे त्रिपुष्कर की आकृति में परिवर्तन होता गया और 12–13वीं शताब्दी तक वह पूरी तरह परिवर्तित हो चुका था। इससे ऊर्ध्वक और आलिंग्य हिस्से हट गए और आंकिक, जो कि अंक में रखकर बजाया जाता था, वही भाग बच गया जो आगे चलकर मृदंग के नाम से प्रचलित हुआ। वर्तमान में प्रचलित उत्तर भारत का मृदंग या पखावज तथा दक्षिण भारत का मृदंगम् भरतकालीन त्रिपुष्कर के आंकिक भाग का ही एक परिष्कृत रूप है।

वर्तमान में हुए शोध कार्यों से स्पष्ट है कि भरत के *नाट्यशास्त्र* में वर्णित त्रिपुष्कर वाद्य के ऊर्ध्वक और आलिंग्य भाग से वर्तमान तबले तथा आंकिक भाग से उत्तर भारतीय वाद्य मृदंग या पखावज तथा दक्षिण भारतीय वाद्य मृदंगम् का विकास हुआ है।

18वीं शताब्दी में तबला वाद्य के शास्त्रीय संगीत में प्रयोग में आने के बाद इसके आकार-प्रकार, यानी इसकी बनावट में लगातार परिवर्तन होते गए। सांगीतिक वाद्यों द्वारा मूलतः नादात्मकता ही प्रकट होती है। प्रत्येक वाद्य की अपनी सीमाएँ होती हैं, लेकिन उन सीमाओं में रहकर नाद की संपूर्णता की खोज ही वाद्यों के आकार-प्रकार में बदलाव का मूल कारण होता है। किसी वाद्य के आकार-प्रकार में बदलाव से वाद्य में ध्वन्यात्मक या नादात्मक (Tonal quality) परिवर्तन

© NCERT not to be republished

चित्र 5.2 – द्विमुखी अवनद्ध वाद्य थविल बजाते हुए

आते हैं। नादात्मकता में परिवर्तन के कारण वाद्य की वादन तकनीक में परिवर्तन आता है। वादन तकनीक में जो परिवर्तन आता है, वह नयी रचनाओं और उसके नाद सौंदर्य को प्रभावित करता है।

18वीं शताब्दी में खयाल गायन शैली के साथ संगत करने के उद्देश्य से तबला वाद्य प्रकाश में आया। शास्त्रीय संगीत में प्रचलन में आने के बाद इस वाद्य के आकार-प्रकार में बहुत परिवर्तन आए, जिसका प्रमुख कारण वाद्य की नादात्मकता में वृद्धि करना और संगत की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए वाद्य को पूर्णता प्रदान करना था। 18वीं शताब्दी के कतिपय उपलब्ध चित्रों में नर्तकियों के साथ तबला वादक द्वारा खड़े रहकर कमर में बाँधकर तबला बजाने के चित्र मिलते हैं, वहीं राजदरबारों में गायन की संगत में वाद्य को सामने रखकर बजाने के चित्र भी मिलते हैं। इन चित्रों में कहीं-कहीं बायें पर स्याही नहीं दिख रही है। यह सर्वविदित ही है कि बायें पर गीला आटा लगाकर तबला वादन करने की प्रथा वर्षों तक चली। पंजाब में भी बायें तबले को 'धामा' कहा जाता रहा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कमर में बाँधकर खड़े रहकर तबला बजाने से होते हुए, बैठकर बायें को गोद में तथा दाहिने को सामने रखकर तबला वादन करना, यह क्रमिक विकास हमें इस वाद्य के वादन के संदर्भ में दिखायी देता है। इन चित्रों में अधिकांशतः दाहिना तबला बड़े आकार का और बायाँ छोटे आकार का है। बायें को गोद में रखकर बजाने की परिपाटी भी बहुप्रचलित थी। कव्वाली सदृश गायकी में अभी भी इस प्रकार का वादन होते हुए दिखायी देता है।

20वीं शताब्दी के आरंभ में (1900–1906 ई. के मध्य) तबले पर प्रकाशित एक पुस्तक प्राप्त होती है, जिसका नाम है — *रिसाल-ए-तबला नवाज़ी*। इसके लेखक हैं — मुहम्मद इसहाक। इस पुस्तक के मुखपृष्ठ पर एक तबला बजाते हुए वादक का चित्र बना है। इस चित्र में बायाँ तबला छोटा और दाहिना तबला अपेक्षाकृत काफी बड़े आकार का दिखाया गया है। दाहिने तबले का मुख छह–सात इंच से अधिक ही प्रतीत हो रहा है, जबकि डग्गा अपेक्षाकृत छोटे आकार का है; लेकिन दोनों पर पक्की स्याही दिखायी दे रही है। ज़ाहिर-सी बात है कि छोटे आकार के बायें की वादन तकनीक तथा नादात्मकता में अंतर रहा होगा जिसका प्रभाव हमें तबले के सबसे पहले घराने, जिसे दिल्ली घराना कहते हैं, की प्रारंभिक रचनाओं में दिखायी पड़ता है। रचनाओं में बायें (डग्गा) का अपेक्षाकृत कम और केवल सहायक नाद के रूप में ही प्रयोग दिखायी देता है।

कालांतर में तबला वाद्य की संरचना में परिवर्तन हुआ जिसके तहत डग्गा (बायाँ) बड़ा हुआ और दायाँ तबला कुछ छोटा हुआ। साथ ही बायाँ सामने रखकर बजाने की परिपाटी प्रारंभ हुई, जिसकी वजह से बायें में हाथ का रखाव, वर्णों का निकास और दाब-गांस का प्रयोग एक

© NCERT not to be republished

अलग तरह से शुरू हुआ। बायें का आकार-प्रकार बड़ा होने से बायें की आवाज़ की गूँज और नादात्मकता में वृद्धि तो हुई ही, साथ ही सामने रखकर बजाने से दाब-गांस में सौंदर्यात्मक बदलाव हुआ। इसी नादात्मकता को पहचानते हुए विद्वानों ने बायें तबले को प्रधानता देते हुए कुछ रचनाओं का निर्माण किया होगा, जिससे एक नया घराना अस्तित्व में आया जो अजराड़ा घराने के नाम से जाना जाता है।

चित्र 5.3 – तबला एवं हारमोनियम बजाते हुए बाल कलाकार

लखनऊ की बात करें तो लखनऊ में भी प्रारंभ में निश्चित ही बायाँ छोटा तथा दायाँ अपेक्षाकृत बड़ा (चौड़ा मुख) होता था। इसलिए बायें को खुले रूप में बजाकर दाहिने में थपिया बाज बजाने की परंपरा लखनऊ में थी। नाद माधुर्यता को दृष्टि में रखकर लखनऊ में बाद में लव (मैदान) का प्रयोग अधिकाधिक हुआ जिसके लिए दिल्ली की वादन तकनीक (अँगुलियों के रखाव) में अंतर करना ज़रूरी हुआ। आगे चलकर लखनऊ तथा फर्रुखाबाद में हमें बायें का बड़ा होना और दाहिने के आकार का छोटा होना दिखायी देता है।

फर्रुखाबाद घराने का विकास बंद और खुले हुए बोलों के संयोग से हुआ, जबकि बनारस में तबला और बायाँ का आकार सामान्यतः समान होता है। वादन की दृष्टि से देखा जाए तो बनारस के तबले में पाँचों अँगुलियों का प्रयोग एवं तबले के पूरे मुख का प्रयोग प्रमुख विशेषता है। बनारस के तबले पर पखावज का आंशिक प्रभाव दिखता है, जबकि पंजाब घराने की वादन शैली आरंभ में पूरी तरह से पखावज से प्रेरित थी, बाद में इसमें तबले के वर्णों का प्रयोग होने लगा। अतः स्पष्ट है कि तबला वाद्य की संरचना में आए क्रमिक बदलाव उसकी वादन तकनीकियों, पद्धतियों और रचनाओं के विकास को रेखांकित करते हैं।

पखावज की ऐतिहासिकता

अवनद्ध वाद्यों में मृदंग का महत्वपूर्ण स्थान है। गायन तथा नृत्य की संगत के लिए संस्कृत साहित्य में मृदंग का सर्वप्रथम उल्लेख *रामायण* एवं *महाभारत* में पाया जाता है। इस वाद्य के तत्कालीन उल्लेख से यह स्पष्ट है कि मृदंग वादन की कला उस समय प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुकी थी। अजंता की मूर्तिकला में भी इस वाद्य का चित्रण मिलता है।

© NCERT not to be republished

यह द्विमुखी अवनद्ध वाद्य मृदंग वर्तमान में भारत में पखावज, दक्षिण भारत में मृदंगम् तथा उत्तर भारत के पूर्वी प्रदेशों, जैसे– ओडिशा, पश्चिम बंगाल, असम, मणिपुर आदि क्षेत्रों में मृदंग (मर्दल, खोल, पुंग आदि) के नाम से जाना जाता है। उत्तर भारत में इस वाद्य का उपयोग कुछ कम ज़रूर हो गया है, किंतु वाद्य की महत्ता में कोई कमी नहीं आयी है। यह सर्वश्रेष्ठ आदि ताल वाद्य है।

प्राचीन काल में 'आंकिक' (मृदंग) का वादन जिस प्रकार से किया जाता था, लगभग उसी प्रकार उपरोक्त द्विमुखी अवनद्ध वाद्यों का वादन किया जाता है। इन वाद्यों में सामान्य अंतरों के साथ ही चर्म आच्छादन की प्रक्रिया एवं लेपन विधि में भी अंतर होता है।

पखावज शब्द पख+आवज से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है ऐसा वाद्य जो बाजुओं के बल से दोनों हाथों द्वारा बजाया जाता है। पखावज का प्राचीन नाम मृदंग था। मिट्टी से बनाये जाने के कारण इसे मृदंग कहते थे। पखावज का अर्थ है— पख यानी पखुआ (बाँह का वह भाग जो बगल में पड़ता है) और बाज अर्थात बजाना। अत: पूरे बाहु से जो बजाया जाता हो, वह पखावज है। कुछ अन्य लोगों के अनुसार पखावज शब्द पक्ष वाद्य से बना है। पक्ष के दो शाब्दिक अर्थ हैं— भुजाएँ एवं वस्तु के दो छोर। वाद्य के दोनों मुखों पर दोनों भुजाओं के सहयोग से जो बजाया जाता हो, वह पक्ष वाद्य है।

चित्र 5.4 – तबला बजाते हुए कलाकार

आज उत्तर भारतीय संगीत परंपरा में मृदंग और पखावज जैसे दो पृथक वाद्य नहीं रह गए हैं। भरतकालीन मृदंग का ध्वनि एवं आकार से परिष्कृत-सुसंस्कृत रूप, जो मध्य युग के बाद पखावज कहलाया, वही आज मृदंग शब्द का पर्याय बन गया है। अत: जिस वाद्य को हम आज पखावज कहते हैं, वह भरतकालीन मृदंग (आंकिक) का ही परिष्कृत रूप है।

मृदंग में गट्टे नहीं लगाये जाते थे, क्योंकि इसका मृत्तिका निर्मित शरीर गट्टों का भार सहन करने में असमर्थ था। इस कारण यह एक ही स्वर में मिला रहता था। पूड़ियों में खिंचाव एवं एक-दूसरे से संबंध रखने के लिए चमड़े की बद्धियों का प्रयोग किया जाता था। धीरे-धीरे मृदंग निर्माण में मिट्टी की जगह काष्ठ का प्रयोग किया जाने लगा। इसके दोनों छोरों पर दो वृत्ताकार घेरे लगाये गए, जिनमें चर्म रज्जु पिरोये जाने हेतु छिद्र कर दिए गए। इन्हीं दोनों घेरों पर चमड़े की पूड़ियाँ कस दी गईं। इससे स्वरों में उतार-चढ़ाव तो ज़रूर हुआ, परंतु इसका रूप अब भी पूरी तरह से संतोषप्रद नहीं था। अत: इसमें भी सुधार की आवश्यकता महसूस की गई। अब इसमें से लोहे के वृत्ताकार घेरे हटा दिए गए तथा लकड़ी के गट्टों का प्रयोग किया जाने लगा। अब गट्टों के माध्यम से स्वरांतर आसानी से किया जा सकता था। इस प्रकार मध्यकाल में मृदंग की ध्वनि मिट्टी निर्मित मृदंग की ध्वनि से अधिक गंभीर एवं मधुर हो गई।

© NCERT not to be republished

इन सभी तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि प्राचीन मृदंग, जो कि द्विपार्श्वमुखी अवनद्ध वाद्य था, वही आज पखावज के नाम से लोकप्रिय है। आज उत्तर भारतीय संगीत में यह द्विमुखी अवनद्ध वाद्य काफी प्रचलित है। प्राचीन संगीत ग्रंथों में 'पखावज' शब्द का उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि पखावज का नामकरण मध्यकाल में हुआ होगा। मध्यकाल से ही प्रचलित होता हुआ यह वाद्य वर्तमान में उन्नत अवनद्ध वाद्य के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुका है।

1. गायन तथा नृत्य की संगत के लिए मृदंग का सर्वप्रथम उल्लेख किस ग्रंथ में मिलता है?
2. पखावज कौन-सी गायन शैली के साथ बजाया जाता है?
3. ऊर्ध्वमुखी वाद्य से आप क्या समझते हैं?
4. आचार्य भरत के अनुसार प्राचीन काल में आंकिक वाद्य कौन-सा था?

?

पखावज के घरानों की शैलीगत विशेषता

भारतीय संगीत में पखावज के घरानों एवं परंपराओं का क्रमबद्ध इतिहास 18वीं शताब्दी से प्राप्त होता है। इसके पूर्व भी उच्चकोटि के मृदंग वादक थे जिनका उल्लेख *आइने-ए-अकबरी*, *मादन-उल-मौसिकी*, *राग दर्पण* आदि ग्रंथों में किया गया है, किंतु पखावज की आधुनिक वादन शैली तथा घरानों का विकास 18वीं शताब्दी के पश्चात हुआ। पखावज का प्रचलन मध्यकाल के प्रथम चरण से ही व्यापक रूप से था। पखावज के कुछ प्रमुख घरानें इस प्रकार हैं—

कुदउ सिंह घराना

सन् 1812 ई. के लगभग उत्तर प्रदेश के बांदा शहर में पैदा हुए महाराज कुदऊ सिंह का घराना पखावज वादन के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। ये लाला भवानीदीन के प्रतिभावान शिष्य थे, जिनका योगदान पखावज के क्षेत्र में सर्वाधिक है। कुदऊ सिंह के गुरू लाला भवानीदीन भगवान दास की परंपरा के शिष्य थे। भगवान दास के पुत्रों को शहंशाह अकबर ने 'सिंह' की उपाधि दी थी और तब से उनके वंश के सभी कलाकार अपने नाम के आगे 'सिंह' लगाने लगे। इसी कारण बहुत से विद्वान लाला भवानीदीन को भवानी सिंह के नाम से भी जानते हैं।

कुदऊ सिंह दतिया के राजा भवानी सिंह के दरबारी कलाकार थे। अपने जीवन काल में कुदऊ सिंह ने अनेक राजा-महाराजाओं की महफ़िलों को सजाया था, किंतु दतिया नरेश की उदारता, प्यार एवं कला पारखी दृष्टि पर वे इस तरह मुग्ध थे कि एक बार दतिया जाकर बस जाने के पश्चात जीवन के अंतिम क्षण तक वहीं रहे। अपनी बहुमुखी प्रतिभा एवं सिद्धि के बल पर इस

© NCERT not to be republished

कलाकार ने पखावज को अत्यंत गौरवान्वित किया। कुदऊ सिंह अपने युग के सर्वश्रेष्ठ पखावजी थे। प्रभावशाली व्यक्तित्व तथा भक्ति भावना से ओत-प्रोत स्वाभिमानी विचारों के स्वामी कुदऊ सिंह को पखावज का युग पुरूष कहा जाता है।

मृदंग वादन की शास्त्रीय परंपरा को उन्होंने स्वनिर्मित परणों से विकसित किया था। उन्होंने सैकड़ों परणों की रचना की जिनमें गज परण, शिव तांडव परण, अश्व परण आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इन्होंने अपनी मौलिक वादन शैली विकसित की थी जिसे बाद में कुदऊ सिंह घराना के नाम से जाना गया। इनकी वादन शैली ओजपूर्ण एवं गंभीर थी और परणें लंबी होती थीं। इनकी कई परणें 24 आवृत्ति की हैं। इनकी परणों में प्रयुक्त वर्ण समूह क्लिष्ट एवं एक-दूसरे से गुँथे हुए होते हैं। साहित्य की दृष्टि से भी ये परणें उच्चकोटि की हैं। इन परणों में बोलों का गठन चकित करने वाला है। घड़गण, घड़ऽन, तड़ऽन, धिलांऽग, धुमकिट, क्रिधेत धेत्ता, तक्का, थूंगा आदि जैसे वर्ण समूह का इस वादन शैली में खुलकर प्रयोग होता है।

कुदऊ सिंह ने जीवनपर्यंत मुक्त मन से विद्यादान किया तथा सैकड़ों शिष्य तैयार किए। इनके प्रमुख शिष्यों में पं. मदन मोहन उपाध्याय, अयोध्या के बाबा रामकुमार दास, दरभंगा के पं. भईया लाल, राजस्थान के जगन्नाथ पारीक, बंगाल के दिलीप चंद भट्टाचार्य, बनारस के पर्वत सिंह आदि प्रमुख हैं। इन विद्वान कलाकारों के भी सैकड़ों शिष्य आज इस परंपरा को आगे बढ़ा रहे हैं। कुदऊ सिंह पखावज के साथ-साथ गायन एवं तबले के भी सिद्धहस्त कलाकार थे। इनके अनेक शिष्यों, विशेष रूप से मदन मोहन उपाध्याय ने, पखावज के आधार पर तबले की अनेक बंदिशों की रचना की और उन्हें अपने शिष्यों को सिखाया। कुदऊ सिंह के छोटे भाई राम सिंह द्वारा भी इस परंपरा का खूब प्रचार-प्रसार हुआ। राम सिंह के श्रेष्ठ पखावजी पुत्र जानकी प्रसाद और उनके पुत्र पद्म श्री अयोध्या प्रसाद भी कुशल पखावज वादक थे जिनके पुत्र राम जी लाल शर्मा वर्तमान में इस परंपरा का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। कुदऊ सिंह का सन् 1907 में 95 वर्ष की अवस्था में देहांत हुआ।

शैलीगत विशेषता

1. इस घराने की वादन शैली में गाम्भीर्य, ओज तथा तैयारी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।
2. इस घराने में परणों की क्लिष्टता, लंबाई एवं प्रकारों का वैचित्र्य विशेष रूप से देखा जाता है।
3. हाथों की शुद्धता, ध्वनि एवं बोलों की स्पष्टता को विशेष महत्व दिया जाता है।
4. पाँच, सात, दस, बीस, चौबीस आवृत्तियों की परणों का वादन विशेष रूप से किया जाता है।
5. इस घराने के बोलों में सौंदर्य एवं साहित्य का सुंदर सामंजस्य देखने को मिलता है।
6. यह घराना वीर रस से ओत-प्रोत है।

© NCERT not to be republished

नाना पानसे घराना

महाराष्ट्र के उत्साही होनहार बालक नाना पानसे में बचपन से ही संगीत के संस्कार विद्यमान थे। नाना का जन्म महाराष्ट्र के वाई तालुका के पास बावधन में हुआ था। बाल्यावस्था में ही वे पिता से पखावज सीखकर मंदिरों में भजन के साथ सुंदर संगत किया करते थे। पिता के उपरांत नाना को पुणे के दरबारी कलाकार मन्याबा जी कोडितकर तथा चौंडे बुआ एवं मार्तंड बुआ से सीखने का मौका मिला। बाद में वे बाबू जोध सिंह के पास काशी चले गए तथा पखावज की परंपरागत शिक्षा प्राप्त की। काशी में बारह वर्षों तक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात इनके गुरू ने प्रयाग के परम संत योगिराज माधव स्वामी के पास इन्हें भेज दिया। योगिराज स्वामी पखावज के प्रकांड विद्वान थे। इनके शिष्यत्व में नाना बारह साल रहे। अंत में शिक्षा पूर्ण कराने के बाद माधव स्वामी ने नाना पानसे को अपनी बहुमूल्य पुस्तक, पखावज तथा आशीर्वाद देकर स्वयं जल समाधि ले ली।

पखावज में पूर्ण दक्षता प्राप्त करके नाना पानसे इंदौर चले आए। इंदौर में राज्याश्रय प्राप्त होने के पश्चात नाना पानसे ने अपनी प्रज्ञा, प्रतिभा एवं मौलिक सृजन शक्ति के अनुसार गुरूमुखी विद्या में अनेक परिवर्तन किए। उन्होंने ग्रंथों का अध्ययन किया जिससे उन्हें एक नवीन दृष्टि मिली। इस अध्ययन के आधार पर गणितशास्त्र के अनुसार उन्होंने परणों का नवीनीकरण किया। नवीन ठेकों को प्रचलित किया जिसमें 'सुदर्शन' नामक ताल प्रमुख है। अनेक तालों में नवीन बंदिशों की रचनाएँ कीं तथा संगीत शिक्षण को सरल बनाने हेतु मात्राबद्ध पद्धति का निर्माण करके अँगुलियों पर गिनने की रीति को शास्त्राधार दिया। ताल विद्या में यह उनकी अत्यंत महत्वपूर्ण देन है। कहा जाता है कि नाना पानसे का नाम नारायण थोरपे था। ये बचपन में पानसे नाम के एक सुप्रसिद्ध कीर्तनकार के साथ पखावज की संगत किया करते थे। उनकी संगत इतनी सुंदर हुआ करती थी कि लोग विशेष रूप से उनका पखावज सुनने के लिए कीर्तन में आया करते थे। इससे लोगों को 'पानसे का पखावज' सुनने जा रहे, कहने की आदत पड़ गई और इनका नाम पानसे के तौर पर प्रचलित हो गया। एक मत यह भी है कि उनके पाँच सौ शिष्य थे, जिसका अपभ्रंश पानसे हो गया।

नाना पानसे अद्वितीय विद्वान होने के साथ-साथ एक उच्चकोटि के शिक्षक भी थे। उन्होंने खुले मन तथा विशाल हृदय से अनेक शिष्यों को शिक्षा दी। उनके शिष्यों तथा प्रशिष्यों की परंपरा विशाल वृक्ष के समान है। उनके शिष्यों में उनके पुत्र बलवंतराव पानसे, नाती शंकर भैया पानसे, सखाराम बुआ आगले आदि के नाम प्रमुख हैं तथा प्रशिष्यों में अम्बादास पंत आगले, गोविंदराव बुरहानपुरकर, सखाराम, राजा छत्रपति सिंह जूदेव आदि प्रमुख हैं। इनके जन्मकाल के विषय में कतिपय विद्वानों में मतभेद है। इनका निधन 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ।

© NCERT not to be republished

शैलीगत विशेषता

1. इस घराने का बाज सरल एवं मुलायम है। यहाँ लंबी परणें एवं कठिन बोलों का प्रयोग नहीं किया जाता है। यहाँ की बंदिशों में तिरकिट, किटतक, तकतक, धुमकिट, घेड़नग, नगिन्न, गदिगन, धिरधिर आदि सरल बोलों का प्रयोग मिलता है। आसान तरीके से बजने वाले बोलों पर विशेष ध्यान दिया जाता है।
2. इस घराने की बंदिशें सरल होती हैं जिसके कारण बंदिशों को द्रुत लय में बजाना आसान होता है। रेला, चक्रदार आदि वादन की दृष्टि से मधुर एवं सरल होने के साथ सुनने में धाराप्रवाह से प्रतीत होते हैं। लंबे-लंबे एवं कठिन बोलों का प्रयोग नहीं होता। गतियुक्त वर्ण समूहों को इस शैली में विशेष वादन स्थान दिया गया है।
3. सर्वप्रथम यहाँ बंदिशों को ताल देकर साधा जाता है। जब तक बंदिश लय में सही न हो जाए, तब तक साज छूने नहीं दिया जाता है। बाज में गणित की बातें ऐसी सुंदर रीति में सजी होती हैं कि वादक की विद्वता से लोग मंत्रमुग्ध हो जाते हैं।
4. यहाँ की बंदिशों में त्र्यस्त्र जाति के परणों का बाहुल्य दिखायी देता है।

1. कुदऊ सिंह का जन्म कहाँ हुआ था?
2. नाना पानसे का जन्म कहाँ हुआ?
3. पखावज की आधुनिक वादन शैली एवं घरानों का विकास कौन-सी शताब्दी के पश्चात हुआ?

नाथद्वारा घराना

पखावज के नाथद्वारा घराने के प्रवर्तक राजस्थान स्थित आमेर शहर के पं. तुलसी माने जाते हैं। श्रीनाथजी के मंदिर में ध्रुपद अंग के संकीर्तन प्रतिदिन गाये जाते हैं। उसके साथ पखावज वाद्य की परंपरा इस मंदिर में चली आ रही है। इस घराने से संबंधित तीन भाइयों— तुलसी जी, नरसिंह दास जी और हालू जी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हालू जी के दो पुत्र स्वामी जी तथा छबील दास हुए, जिनमें छबील दास जी से परंपरा आगे बढ़ी।

छबील दास के पुत्र फकीर दास, पौत्र चंद्रभान और प्रपौत्र मानजी हुए। मानजी के पुत्र पं. रूपराम को जयपुर के राजा जयसिंह ने अपना राजकीय कलाकार बनाया। रूपराम की तांडव परणें विशेष प्रसिद्ध हुईं। इनके पुत्र वल्लभदास ने अपने पिता रूपराम से तथा जोधपुर दरबार के पखावजी पहाड़ सिंह से भी शिक्षा प्राप्त की। 1802 में वल्लभदास नाथद्वारा चले गए और श्रीनाथ जी के मंदिर से जुड़ गए।

© NCERT not to be republished

वल्लभदास ने देश के विभिन्न भागों में पखावज का वादन किया। वल्लभदास के पुत्र चतुर्भुज शंकर लाल और खेमलाल हुए जिनमें शंकर लाल और खेमलाल प्रसिद्ध पखावजी हुए। खेमलाल जी ने *मृदंग सागर* नामक पुस्तक का लेखन आरंभ किया था जिसमें उनके पुत्र श्याम लाल सहायता कर रहे थे। शंकर लाल के पुत्र पं. घनश्याम दास पखावजी इस परंपरा के महान कलाकार हुए। दूसरी ओर खेमलाल एवं श्याम लाल जी का असामायिक निधन हो जाने से *मृदंग सागर* का लेखन कार्य अधूरा रह गया। कुछ ही दिनों बाद शंकर लाल का भी निधन हो गया। अत: इस परंपरा और पुस्तक का पूरा दायित्व घनश्याम दास पर आ गया। उन्होंने *मृदंग सागर* पुस्तक को पूर्ण कर प्रकाशित कराया, लेकिन पं. घनश्याम दास पखावजी अधिक दिनों तक इस संसार में नहीं रहे। इनके बाद उनके पुत्र गुरू पुरूषोत्तम दास जी ने इस घराने का सफल विकास किया।

इस वादन शैली में विशेषत: तेटे से अधिक किट का प्रयोग होता है, जैसे धा किटतक, ता किटतक किटतक थूं थूं, क्रिधेत आदि बोल समूहों का प्रयोग किया जाता है।

1. इस घराने में पखावज वादन का प्रारंभ प्राय: गणेश वंदना से किया जाता है। कभी-कभी विशेष परिस्थिति में पंचदेव स्तुति परण, शिव स्तुति परण तथा सरस्वती स्तुति परण से भी पखावज वादन आरंभ किया जाता है।
2. स्तुति परण के पश्चात 'धिननक' का बोल बजाया जाता है। यह बाज इस घराने की विशेष बंदिश है, जिसे प्राय: इस घराने के कलाकार ही बजाते हैं। इसके विस्तार के क्रम में बराबर डेढ़ी, तिगुन, चौगुन के लय में काम करते हुए छंदात्मक रूप से इसमें बढ़त किया जाता है। यह बंदिश एकल वादन एवं संगत दोनों में ही समान रूप से बजायी जाती है।
3. इस घराने की विशेषता यह भी है कि इनके शिष्यों को पखावज एवं तबले पर एक ही प्रकार की रचनाओं की शिक्षा मिलती है।

अवधी घराना

अवधी घराना कुदऊ सिंह घराने की ही एक शाखा है। मृदंग सम्राट कुदऊ सिंह से शिक्षा प्राप्त कर लेने के पश्चात उनके दो प्रमुख शिष्य मदन मोहन उपाध्याय और बाबा राम कुमार दास सन् 1930 के आस-पास अयोध्या चले गए। वहाँ उन्होंने पखावज का काफी प्रचार-प्रसार किया तथा अपने अनेक शिष्य तैयार किए। मदन मोहन उपाध्याय ने स्वामी रामदास नाम के एक प्रतिभावान शिष्य को पखावज की शिक्षा देकर, उन्हें अयोध्या में पखावज के प्रचार का दायित्व सौंपा। तत्पश्चात वे अयोध्या छोड़कर बंगाल चले गए। बाबा रामदास ने अयोध्या में ही रहकर पखावज का यथेष्ट प्रचार-प्रसार किया तथा अनेक शिष्यों को तैयार करके अवधी घराने की नींव डाली।

अवधी घराने के कलाकार अपने घराने के आद्य पुरूष के रूप में कुदऊ सिंह जी को ही सम्मान देते हैं। यद्यपि बाबा राम कुमार दास ने अवधी घराने की अप्रत्यक्ष कल्पना की थी, तथापि

© NCERT not to be republished

उसे साकार करने का महत्वपूर्ण कार्य स्वामी भगवान दास ने किया। उन्हीं के प्रयत्नों के फलस्वरूप इस परंपरा में पखावज के अनेक शिष्य तैयार हुए, जिन्होंने घराने का नाम रौशन किया। इसी घराने के स्वामी रामशंकर दास उर्फ़ पागल दास ने विश्वव्यापी ख्याति अर्जित की। इन्होंने अपने गुरू स्वामी भगवान दास और दादा गुरू बाबा राम कुमार दास की परंपरा को आगे बढ़ाया।

शैलीगत विशेषता

1. इस घराने में गणित द्वारा 'ता' और 'धा' के वादन में चमत्कार उत्पन्न करना मुख्य विशेषता है। इस घराने की अनेक स्तुतियाँ एवं परणें सुनने को मिलती हैं।
2. बंदिशों की रचनाओं में साहित्य पक्ष पर विशेष ध्यान दिया जाता है, जिसके फलस्वरूप बंदिशों में उच्चकोटि की अनेक स्तुतियाँ एवं कवित्त परणें सुनने को मिलती हैं।
3. व्याख्यात्मक ढंग से बोलों की विशेषताओं को समझाते हुए उनका वादन करना, इस घराने की विशेषता है।

अभ्यास

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. *मृदंग सागर* पुस्तक में किस घराने की बात कही गई है?
   (क) अवधी घराना (ख) नाथद्वारा घराना
   (ग) पानसे घराना (घ) कुदऊ सिंह घराना
2. मृदंग का सर्वप्रथम उल्लेख —
   (क) रामायण में पाया जाता है। (ख) वेदों में मिलता है।
   (ग) नारदीय शिक्षा में पाया जाता है। (घ) बृहद्देशी में पाया जाता है।
3. पखावज शब्द किन दो शब्दों से बना है?
   (क) पखा+आवाज (ख) पख+आवज
   (ग) पख+वावज (घ) पखा+वज
4. 'धिननक' बाज किस घराने की परंपरा रही है?
   (क) अवधी (ख) नाथद्वारा
   (ग) लखनऊ (घ) अजराड़ा
5. सुदर्शन ताल के रचयिता हैं —
   (क) नाना पानसे (ख) कुदऊ सिंह
   (ग) अवधी (घ) पुरूषोत्तम दास

© NCERT not to be republished

सही और गलत बताइए —

1. अवनद्ध वाद्यों में मृदंग का एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। ( )
2. पखावज का प्राचीन नाम मृदंग था। ( )
3. मिट्टी की मृदंग में गट्टे नहीं लगाये जाते थे। ( )
4. पक्ष के शाब्दिक दो अर्थ हैं — भुजाएँ एवं वस्तु के दो छोर। ( )

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

1. नाथद्वारा घराना परंपरा के प्रवर्तक कौन हैं?
2. अवधी घराना किस घराने की शाखा है?
3. *आइने-ए-अकबरी*, *मादन-उल-मूसिकी*, *राग दर्पण* आदि ग्रंथों में किसका वर्णन किया गया है?
4. भगवान दास के पुत्रों को 'सिंह' की उपाधि किसने प्रदान की थी?
5. पानसे घराने की नींव किसने रखी?
6. पखावज बजाने की पद्धति पर विचार करते हुए दस पंक्तियाँ लिखें।
7. पखावज की बनावट में हर काल में किस तरह के परिवर्तन दिखायी देते हैं?
8. नाथद्वारा घराने की चार विशेषताएँ बताएँ।
9. नाथद्वारा घराने के अंतर्गत पखावज बजाने वाले छह कलाकारों के नाम बताएँ।
10. कुदऊ सिंह के बारे में आप क्या जानते हैं। सात से आठ पंक्तियों में व्यक्त करें?
11. अवधी घराने के कुछ कलाकारों का नाम बताते हुए लिखें कि किस तरह इन कलाकारों ने घराने का प्रचार-प्रसार किया।
12. नाना पानसे के बारे में आप क्या जानते हैं? उनका असली नाम क्या था?
13. स्वाति मुनि ने प्रकृति के किस रूप को देखकर तबला के आदि रूप जैसे वाद्य को रचा?
14. खुसरो खाँ किसके दरबार में थे और तबला वाद्य को बनाने में उन्होंने क्या योगदान दिया?
15. ऊर्ध्वक, आंकिक, आलिंग्य से आप क्या समझते हैं? वर्तमान युग में बजाये जाने वाले ऐसे वाद्यों के नाम बताएँ और उनकी फोटो खींचकर लगाएँ।
16. तबला वाद्य बजाने की विधियाँ किस-किस प्रकार की हैं?
17. *रिसाल-ए-तबला नवाज़ी* क्या है?
18. तबले के विकास में घरानों के योगदान के विषय में लिखें।

गतिविधियाँ/परियोजना

1. पखावज के घरानों की जानकारी एकत्रित कर उन घरानों की विशेषताओं को लिखिए।
2. नाथद्वारा घराने के बारे में विस्तारपूर्वक लिखिए।

not to be republished © NCERT

3. संपूर्ण भारतवर्ष में मृदंग वाद्य के कई प्रकार हैं, उनके बारे में लिखें। इन सभी प्रकारों के चित्र एकत्रित करके एक परियोजना/पोस्टर बनाएँ और कक्षा को सजाएँ।
4. तबला वाद्य और विज्ञान का संबंध चित्रों द्वारा समझाइए।
5. कुदऊ सिंह घराने और नाना पानसे घराने के वर्तमान वादकों के बारे में जानकारी एकत्र कर अभ्यास पुस्तिका में लिखिए।
6. विभिन्न घरानों में पखावज के बोलों की तुलनात्मक तालिका बनाइए।
7. अपने शिक्षक की सहायता से उन फिल्मों और विज्ञापनों (किन्हीं पाँच) को सूचीबद्ध कीजिए जिनमें पार्श्व संगीत के रूप में पखावज वादन का प्रयोग किया गया है।

© NCERT not to be republished